Impact Factor (SJIF): 6.092 E-ISSN: 2583-1615

International Journal of Research in Academic World

Received: 01/March/2024 IJRAW: 2024; 3(4):31-34 Accepted: 02/April/2024

प्राचीन भारत में जाति-प्रथा के विकास का अवलोकन

*[1]डॉ. अनिल कुमार यादव

*[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व विभाग पी0जी0 कालेज, पट्टी, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय समाज में जाति के विकास का अध्ययन करना है और समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र में असमानता दिखाई पड़ती है, किस तरह निम्न वर्ग का जीवन कठिनता से व्यतीत हो रहा था | उनके साथ विभिन्न प्रकार के भेदभाव किया जाता था इसलिए वह समाज में अपना स्थान नही बना पा रहे थे अब इस अध्ययन के माध्यम से परास्नातक व शोध छात्रों को जाति के विकास में आने वाली समस्या से परिचित करना है तथा जातिगत आधार पर आपस में बटेंगे भी नही।

मुख्य शब्द: जाति, अनुलोम, प्रतिलोम, वर्णसंकर, विवाह आदि।

प्रस्तावना

जाति प्रथा का विकास आर्य और अनार्य जाति से प्रारम्भ हुआ | आर्यों ने अनार्यो को अपने समाज में स्थान दिया ताकि भद्र समाज में उनकी अपनी पहचान हो और बाद में वर्ण को पहचानना कठिन होने लगा तो उनकी श्रेष्ठता बनाये रखने के लिए प्रत्येक वर्ण अपने को जाति मान बैठे, इस तरह जाति का विकास प्रारम्भ हो गया |

ऋग्वैदिक काल में जाति व्यवस्था

ऋग्वैदिक समाज दो वर्गों में बंटा था आर्य और दास | आर्य लोग जन और विश में बंटे थे | ये इकाइयां भाईचारे के सिद्धान्त पर आधारित थी | ऋग्वैदिक समाज में ब्राह्मण और वैश्यों की स्थिति समाज में विश से उच्च न थी | समाज के सभी सदस्यों की स्थिति बराबर थी | इस काल में वर्ण जन्मजात न होकर व्यवसाय पर आधारित था | व्यवसाय-परिवर्तन सम्भव था | ऋग्वेद के एक स्थान पर एक ऋषि कहता है 'मै कवि हूँ | मेरा पिता वैद्य है तथा मेरी माता अन्न पीसने वाली है | साधन भिन्न है परन्तु सभी धन की कामना करते है | [1] इसमें स्पष्ट है कि व्यवसाय आनुवंशिक नही थे | ऋग्वेद के पुरुष सुक्त में सर्वप्रथम आर्य के चार वर्णों में विभक्त होने के प्रमाण मिलते है | [2] किन्तु उस समय उनमे विवाह, खान-पान एवं व्यवसाय के चुनाव में कोई प्रतिबन्ध नही था | [3] चारो वर्ण व्यक्तिगत विशेषता के आधार पर पृथक-पृथक वर्ण माने जाते थे | उनमे जन्म का कोई महत्व न था अर्थात जाति की उत्पत्ति अभी नही हुई थी |

उत्तर वैदिक काल में जाति प्रथा

उत्तरवैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिवर्तित होने लगी थी | परन्तु इस समय भी जाति प्रथा उतनी अधिक कठोर नही बनी जितनी सूत्रों के काल में देखने को मिलती है | व्यवसाय परिवर्तन कुछ कठिन सा हो गया था | धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में चारो वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र) के कर्तव्यो अधिकारो और स्थिति में विभेद किया जाने लगा | शतपथ ब्राह्मण में चारो वर्णों की अन्त्योष्टि के लिए चार प्रकार के टीलो का (Funereal mourels) का उल्लेख है | प्रत्येक वर्ण के उपयोग के लिए अलग-अलग रंग के यज्ञोपवीत का विधान मिलता है | सम्बोधन के ढंग भी अलग-अलग मिलते है,ब्राह्मण को एहि (आइये) क्षत्रिय के आगाहि (आओ) वैश्य के आद्रव (जल्दी आओ) तथा शुद्र को 'आधाव' (दौड़कर आओ) कहकर संबोधित कियेजाने का विधान मिलता है | [4] इन सबसे स्पष्ट है कि वर्ण भेद उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे थे | समाज में अनेक धार्मिक श्रेणियों (Guilds) का उदय हुआ जो कठोर होकर विभिन्न जातियों में बदलने लगी | व्यवसाय अनुवांशिक होने लगे, चर्मकारो, रथकारो, धातुकारो आदि की अलग जातियां बन गयी | कुछ सीमा तक अन्तर्वर्ण विवाह होते थे | शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि राजा अपनी शक्ति ब्राह्मण से ही प्राप्त करता है | क्षत्रिय या राजा भूमि के स्वामी होते थे | वे देश की रक्षा के लिए युद्ध करते तथा प्रजा से कर लेते थे | ऐसा लगता है कि इस ब्राह्मणों तथा क्षत्रियो में सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गयी थी | शतपथ ब्राह्मण एक दूसरे स्थान पर क्षत्रिय को ब्राह्मण की अपेक्षा श्रेष्ठ बताता है | वैश्य दूसरे को कर देते थे तथा कृषि व्यापार और उद्योग धन्धो में लगे रहते थे | शुद्रो का कार्य सेवा करना था, किन्तु वह यदा-कदा यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओ में भाग ले सकता था | [5] इस काल में शुद्रो पर कुछ प्रतिबन्ध लगने लगे जैसे कि वह उच्च तीन वर्णों के व्यक्तियों की भांति स्वयं यज्ञ नही कर सकता था | [6] उच्च तीन वर्णों में वैवाहिक सम्बन्ध होते थे किन्तु साधारणतया अनुलोम विवाह जिसमे पुरुष का वर्ण स्त्री के वर्ण से ऊँचा होता था अच्छा समझा जाता था | शुद्रो के साथ शेष तीन वर्णों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध धर्म विहीन

*Corresponding Author: डॉ. अनिल कुमार यादव

माना जाता था | [7] उच्च वर्ण के व्यक्तियों का शुद्र कन्या से विवाह करना निंदनीय समझा जाता था | [8] उत्तर वैदिक काल में वर्णों का लचीलापन धीरे-धीरे समाप्त हो गया और जाति-प्रथा प्रारम्भ होने लगी |

व्यक्ति के उच्च व निम्न वर्ण में जन्म प्राप्ति का वर्णन उपनिषदों में अच्छे और बुरे कर्मो के आधार पर मिलता है | छान्दोग्य उपनिषद में लिखा गया है कि यदि कोई व्यक्ति पूर्व जन्म में अच्छे कर्म करता है तो उसका जन्म तीन उच्च वर्णों में होता है और जो दुराचारी होते है वे कुत्ता, सुअर या जाति बहिष्कृत व्यक्ति के रूप में जन्म लेते है | [9] इससे स्पष्ट कहा जा सकता है कि कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था थी जाति-प्रथा अभी जटिल नही हुई थी | वैदिक साहित्य में जाति शब्द नही मिलता है | परन्तु ऐसे वर्गों के नाम मिलते है जो उत्तर वैदिक काल में जातियां बन गई जैसे-उग्र, क्षत्र, सूत्र, पौल्कस, चांडाल, आयोगव, पांचाल और वैदेह आदि | [10]

छठी शताब्दी ई० पू० से चौथी शताब्दी ई० पू० के मध्य जाति व्यवस्था

इस काल में लेखन कला का विकास, नगरो की स्थापना तथा जाति प्रथा स्पष्टत: प्रारम्भ हुआ | क्षत्रियो की स्थिति सर्वश्रेष्ठ हो गयी इसलिए बौद्ध ग्रंथो में क्षत्रिय को सर्वश्रेष्ठ जाति कहा गया है | इसका कारण यह प्रतीत होता है कि बौद्ध तथा जैन धर्मो के प्रवर्तकों, गौतम बुद्ध तथा महावीर का जन्म क्षत्रिय जाति में ही हुआ था, उच्च बौद्धिक स्तर और राजनीतिक शक्ति के कारण समाज में क्षत्रियो की बहुत प्रतिष्ठा थी | परन्तु बौद्ध ग्रंथो में ब्राह्मण ग्रंथो से पृथक तत्कालीन समाज के केवल दो वर्गों का विवरण प्राप्त होता है-भू-स्वामी क्षत्रिय वर्ग तथा कृषि कार्य करने वाले जातियों का वर्ग अर्थात श्रमिक (मजदूर) दास अथवा कर्मकार आदि | 600 ई० पू० से 300 ई० पू० के मध्य धर्मसूत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस काल में वर्ण क्रमश: जाति में परिवर्तित होने लगे थे | सूत्रकाल में व्यक्ति का वर्ण उसके जन्म के आधार पर निर्धारित किये जाने के कारण जाति-प्रथा का प्रारम्भ हो गया था | धर्मसूत्रों में तीन उच्च वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को "द्विज" कहा गया और इन्हें शुद्रो से अलग माना जाने लगा | ब्राह्मणों की सामाजिक प्रतिष्ठा अत्यधिक हो गयी | उन्हें विविध प्रकार के करो तथा दण्डो से मुक्त घोषित किया गया | प्रशासन में पुरोहित का प्रभाव बहुत बढ़ गया तथा उसे राजा से भी ऊपर बताया गया गौतम के अनुसार राजा अन्य सभी वर्गों का शासक होता है किन्तु वह ब्राह्मण वर्ग का शासक नही है | आपस्तम्ब ने दस वर्ष के ब्राहमण को सौ वर्ष के क्षत्रिय से श्रेष्ठतर बताया है | ब्राह्मण का कार्य अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ-याज्ञन तथा प्रतिग्रह था | राजन्य (क्षत्रिय) का प्रमुख कर्तव्य युद्ध तथा शासन करना था | दोनों वर्णों के बीच सामंजस्य बनाये रखने के लिए सूत्रकारो ने यह घोषित किया कि राजा तथा पुरोहित दोनों मिलकर ही संसार में धर्म की रक्षा करते है | तीसरा स्थान वैश्यों का था जो कृषि, पशुपालन, वाणिज्य के द्वारा अपना निर्वाह करते थे | उनकी सामजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति धीरे-धीरे शुद्रो के निकट आती जा रही थी | समाज में अस्पृश्यता का उदय हुआ | चाण्डाल अस्पृश्य माने जाने लगे जो नगर के बाहर निवास करते थे | वर्ण कठोर होकर जाति में बदल गए जिसका आधार कर्म न होकर जन्म माना गया | शुद्रो को समाज का अत्यंत निष्कृष्ट एवं अधिकार विहिन वर्ग माना गया | उन्हें अध्ययन, यज्ञ, मंत्रोच्चारण आदि का अधिकार नही था | वशिष्ठ उन्हें श्मशान के समान अपवित्र' बताते है | उनका एकमात्र कार्य दूसरों की सेवा द्वारा अपना निर्वाह करना था | उन्हें सम्पत्ति रखने का अधिकार नही था तथा वे कुछ सम्पत्ति कमाते भी थे वह अन्य वर्णों के उपयोग के लिए थी | समाज में इनके अतिरिक्त अन्य जातियों का उदय हुआ-अम्बष्ट, उग्र, निषाद, मागध, वैदेहक़, रक्षकार आदि | इनकी उत्पत्ति अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों के फलस्वरूप हो गया | पाणिनी ने दो प्रकार के शुद्रो का वर्णन किया है | निरवासित (नगर के बाहर रहने वाले) तथा अनिरवासित (नगर की सीमा में रहने वाले) अनिरवासित जब उच्च जाति के बर्तनों में भोजन करते थे तो उनके बर्तन अपवित्र नही होते थे | जबकि निरवासित के भोजन ग्रहण करने से उनके बर्तन अपवित्र हो जाते थे |' [11] प्राग्मौर्ययुगीन सामाजिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है | ब्राह्मण साहित्य से पता चलता है कि इस काल के समाज में चारो वर्णों में कठोरता आ गयी तथा जातिगत बन्धन एवं भेद-भाव स्पष्ट हो चुके थे समाज में छुआ-छुत की भावना बलवती हो गयी तथा यह माना गया कि शुद्र जाति के स्पर्श मात्र से ब्राम्हण तथा अन्य वर्ण के लोग अपवित्र हो जाते है | वर्ण का आधार कर्म के स्थान पर जन्म को माना गया | ब्राह्मण वर्ण जन्मना श्रेष्ठता का दावा करने लगा | विष्णुधर्मसूत्र में एक स्थान पर कहा गया है कि दस साल का ब्राम्हण भी 100 साल के क्षत्रिय की अपेक्षा श्रेष्ठ है तथा उसे क्षत्रिय का पिता मानना चाहिए | ब्राम्हण अन्य वर्णों का पिता होने के कारण करो तथा दण्डो से मुक्त समझा गया | गौतम धर्म सूत्र में कहा गया है कि राजा को चाहिए कि वह पुरोहित ब्राम्हण को निम्न छ: दण्डों से मुक्त रखे जैसे-शारीरिक यातना, कारावास, अर्थदंण्ड अथवा जुर्माना, देश-निष्कासन, अपमानित किया जाना, मृत्युदण्ड | बौद्ध तथा जैन ग्रंथो में जन्मजात सामाजिक श्रेष्ठता के विचार का खंडन किया गया है | ये सभी ग्रन्थ कर्म के आधार पर मनुष्य में विभेद स्थापित करते है | स्वयं महात्मा बुद्ध ने कई बार इस बात पर बल देकर कहा कि मानव अपने गुण तथा कर्म के आधार पर ही श्रेष्ठ अथवा निम्न होता है, जन्म के आधार पर नही | बुद्ध कहते है कि शील तथा प्रज्ञायुक्त मानव ही ब्राम्हण है | इसी आधार पर वे अपने को ब्राम्हण भी कहते थे | जातक ग्रंथो से पता चलता है कि इस संमय समाज में अस्पृश्यता की भावना जड़ जमा लिया था | अस्पृश्यता के लिए चांडाल, निषाद, हीनजाति, हीनसिपिन आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है | सेतकेतु जातक में हम एक ब्राम्हण को चाण्डाल के डर से भागते हुए पाते है | ताकि उसके शरीर वायु के स्पर्श से वह अपवित्र न हो जाए | मातंक जातक में एक चाण्डाल का निवास स्थान नदी के किनारे से इस कारण हटा दिया गया कि उसने नदी में दातुन फेंक दिया था और यह आगे स्नान करते हुए एक ब्राम्हण की चोटी में फंस गयी थी | चितसंभूत जातक में हम एक क्रुद्ध भीड़ को दो चाण्डाल भाइयो को इस कारण पीटते हुए पाते है कि उनके मार्ग में पड़ जाने के कारण दो कुलीन महिलाओ ने मन्दिर जाने का विचार त्याग दिया था जिससे लोग भोजन तथा पेय प्राप्त करने से वंचित रह गए इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर कहा गया है कि चाण्डाल को देखने के बाद एक सौदागर की कन्या अपने घर जाकर सुगन्धित जल से अपने नेत्रों को धोती है | इस तरह तत्कालीन समाज में जाति-पांति दिखाई पड़ता है | ये ग्रन्थ क्षत्रिय वर्ण को ब्राम्हण की अपेक्षा सामाजिक व्यवस्था में उच्चतर स्थान प्रदान करता है | [12] ईसा पूर्व छठी व पांचवी शताब्दी में बहुत से क्षत्रिय बड़े भूमि खंडो के स्वामी थे | कृषि के उत्पादन में वृद्धि होने के कारण गंगा नदी की घाटी में अनेक नगरो का विकास हुआ जो महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र बन गए | इनमे अनेक सेठ और व्यापारी रहते थे | बौद्ध समाज मे व्यक्ति के आचार पर बल दिया गया | व्यक्ति को उसके कर्मो के अनुसार फल मिलेगा, इस बात पर जोर दिया गया | इसी कारण व्यापारियों और शिल्पियों में बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय हो गया | विनयपिटक (लगभग ई० पू० चौथी शती) से ज्ञात होता है कि वेणों, चांडालो, निषादों, रथकारो ने उस समय तक अपनी अलग जातियां बना ली थी | [13] किन्तु चमार, कुम्हार आदि हस्त-शिल्पियों के वर्ग अभी संगठित न थे इसलिए उनकी अलग जातियां नही बनी थी | ई० पू० तीसरी शताब्दी के पहले जाति-प्रथा में अपेक्षाकृत कम संकीर्णता थी | द्विजो में अन्तर्जातीय विवाह तथा खान-पान की परम्परा कम ही सही परन्तु कुछ सीमा तक मौजूद अवश्य थी | इस काल तक जाति धर्म का उल्लंघन करने वाले सदस्य को निर्धारित प्रायश्चित पूर्ण करने के पश्चात पुनः जाति में सम्मिलित किये जाने की व्यवस्था गतिशील थी |

लगभग 300 ई० पू० से 200 ई० पू० के मध्य (मौर्य काल से मौर्यत्तर काल तक)

कौटिल्य और मनु [14] ने चारो वर्णों के प्राय: वे ही सब कर्तव्य बतलाये है जिनका वर्णन धर्मसूत्रों में है कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में ब्राम्हण जाति के लिए यज्ञ करना, दान देना व लेना, क्षत्रियो के लिए शास्त्रजीवी होना एवं जीवो की सुरक्षा करना और वैश्य जाति के लिए कृषि, पशुपालन तथा व्यापार कर्म करना बताया गया है | शुद्रो के लिए द्विजो की सेवा, धन कमाना, कला एवं शिल्प कर्म बताया गया था | इस काल से पूर्व बौद्ध व जैन सम्प्रदाय के प्रवर्तकों ने कहा था कि वर्ण-विभाजन कर्म के आधार पर होना चाहिए न कि जन्म के आधार पर | इसी तरह का विचार महाभारत [15] और गीता [16] में मिलता है | महाभारत में सामाजिक सम्मान का कारण उसका जन्म नही, वरन उंनका श्रेष्ठ आचरण है | इसी, भांति गीता में स्वयं श्री कृष्ण ने कहा है कि मैंने समाज का चार प्रमुख वर्णों में विभाजन गुण और कर्म के आधार पर किया है |

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागश :
तस्य कर्ताश्मपि गा विद्वयकर्तारमव्ययम "

मनु के अनुसार समाज में ब्राम्हण की स्थिति सर्वश्रेष्ठ है वह ब्रम्हविद्या में पारंगत होने के कारण ब्राम्हण सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था | उसे मृत्युदण्ड नही दिया जाता था | राजा उसे उच्च से उच्च पदों पर नियुक्ति देता था समाज में वैश्यों की स्थिति शुद्रो के समकक्ष पहुँच गयी थी | किन्तु उन्हें शिक्षा प्राप्त करने तथा यज्ञोपवीत धारण करने की मान्यता मिली थी | शुद्रो की समाज में सबसे निम्न स्थिति थी जो इस बात से स्पष्ट है कि मनु ने शुद्रो और दासो में कोई भेद नही किया है और उनको अत्यंत कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की है | [17] अनेकश: ! वर्ण संकर जातियों का उदय इस काल में हुआ | मनुस्मृति में प्रतिलोम विवाहों से उत्पन्न सन्तान को व्रात्य कहा गया है | जिन्हें प्रायश्चित करने पर ही उनको जाति में प्रविष्ट किया जाता था | मनु ने अन्तर्जातीय विवाहों से उत्पन्न संतानों को उनके वर्ण मिश्रण के अनुसार अनेक नाम दिया है | मनु ने अवष्ट, निषाद, सूत, उग्र, मागध आदि 57 जातियों का उल्लेख किया है जो मुख्यता व्रात्य कही जाती थी | [18] मनु के अनुसार इन सभी जातियों की उत्पत्ति अन्तरजातीय विवाहों के फलस्वरुप हुई | जातियों की उत्पत्ति के विषयो में महाभारत और मनुस्मृति दोनों ही के सिद्धांत पूर्णत: मान्य नही प्रतीत होते है | निषाद तथा अम्बष्ट भारत की आरम्भिक जातियां थी इसी प्रकार मागध तथा विदेह जैसी जातियों का नामकरण उनके भौगोलिक निवास-स्थान के आधार पर रखा गया लगता है | उत्तर वैदिक काल में 'सूत' एवं 'उग्र' जातियों का समाज में अधिक सम्मानीय स्थान था और वे राज्य के बड़े पदाधिकारी थे | कुछ जातियों की उत्पत्ति को लेकर धर्मशास्त्रकारो ने अलग-अलग मत प्रस्तुत किया है | जैसे बौधायन, वशिष्ठ तथा मनु 'अम्बष्ट' जाति को ब्राम्हण पिता तथा क्षत्रिय माता से अथवा क्षत्रिय पिता एवं शुद्र माता से मानते है | इसके विपरीत गौतम उन्हे क्षत्रिय पिता एवं वैश्य माता की सन्तान बताते है | इस काल में उत्तरी भारत में यवन पह्लव, शक एवं कुषाण जैसी विदेशी जातियों का प्रवेश तथा मिश्रण आरम्भ हुआ | इसके अतिरिक्त जातियों में हलवाहा (हलक), बढ़ई, वर्धकी, बुनकर (कौलिक) गड़ेरिया (गोलिक) तेली (तिलपिसक) व धातुकर्मी आदि प्रमुख जातियां थी |

गुप्तकाल (लगभग 300 ई० से 600 ई० के मध्य जाति प्रथा)

इस काल में ब्राम्हणों की समाज में अधिक प्रशंसा की गयी और उन्हें श्रेष्ठतम वर्ण माना गया | इस काल में उत्तरी भारत में अंतर्वेदी (गंगा-यमुना के बीच का प्रदेश) के ब्राह्मण, राजस्थान में 'श्रीमाल' ब्राह्मण और गुजरात में 'नागर' ब्राम्हण अपने को अन्य प्रदेशो के ब्राम्हणों से श्रेष्ठ समझने लगे | बंगाल के अनेक ब्राम्हण परिवार कहते है कि उनके पूर्वज कन्नौज से आये थे | गुप्त कालीन धर्मशास्त्रकारो ने भी विभिन्न जातियों की समाज में स्थिति निश्चित करने के उद्देश्य से वर्ण-संकर उत्पत्ति तथा अन्तर्जातीय विवाहों को उनकी उत्पत्ति का मुख्य कारण बताया ई० पू० द्वितीय शताब्दी से लेकर 200 ई० के मध्य भारत में निवास करने वाले युनानी, पहलव, शक, कुषाण, आदि विदेशी शासक कुलो को 'ब्रात्य' क्षत्रिय (सहायक क्षत्रिय) स्तर दिया गया | लगभग यही स्थिति कुछ उन कबीलाई गुटों के लिए भी व्याख्यायित की गई जिन्होंने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था अथवा ब्राहाणिक सामाजिक व्यवस्था को अपना लिया था | वे भी सहायक-क्षत्रिय कुल के रूप में मान्यता प्राप्त करने लगे थे | इस काल में विवाह साधारणतया अपनी ही जाति में होते थे फिर भी याज्ञवल्क्य स्मृति तथा गुप्तकालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि अनुलोम विवाह भी सम्पन होते थे जैसे-वाकाटक राजकुमार रुद्रसेन द्वितीय का प्रतिलोम विवाह प्रभावती गुप्ता से हुआ था | रुद्रसेन ब्राम्हण था और प्रभावती गुप्त वैश्य | इस काल में उच्च जातियों के वैवाहिक सम्बन्ध विदेशी राजकुलो के साथ भी हुए | इक्ष्याकु वंश के राजा ब्राम्हण थे और उन्होंने एक शक राजकुमारी को पुत्रवधु के रूप में स्वीकार किया | व्यवसाय का चयन प्राय: जातिगत होते थे, व्यवसायों पर भी किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही था | अनेक ब्राम्हण व्यापारी, वास्तुकार, राजकीय कर्मचारी और शासक थे | मृच्छकटिकम के अनुसार चारूदत्त ब्राम्हण था किन्तु वह वैश्यों का व्यवसाय करके आजीविका अर्जित करता था | गुप्त सम्राट संभवत: वैश्य थे, किन्तु क्षत्रियो के रूप में शासन कर रहे थे | तत्कालीन समाज में शुद्रो को मुख्य कार्य कृषि और व्यापार करना था | याज्ञवल्क्य स्मृति में शुद्रो को कृषि और व्यापार करने की स्वीकृति प्रदान की | इसका तात्पर्य है कि वैश्यों और शुद्रो की स्थिति में विशेष अन्तर न रहा | समाज में नया वर्ग जो 'अन्त्यज' अथवा 'अछुत' थे | 'चाण्डाल' तथा 'चर्मकार' जैसे कुछ वर्ग इसी श्रेणी में रखे गए | फाहियान अछूतों को 'चाण्डाल' कहता है जो गाँवो तथा नगरो के बाहर निवास करते थे वे ही आखेट करते एवं मांस बेचते थे | गाँवो एवं नगरो में प्रवेश करते समय वे लकड़ी पीटते हुए चलते थे ताकि लोग मार्ग से हट जाए और उनके स्पर्श से बच जाए | ऐसा सम्भवत: उनके अपवित्र कार्यो जैसे-मांस काटना व बेचना, मैला ढोना आदि के कारण किया जाना था | गुप्तकाल में 'लिपिक' अथवा राजकीय लेखो के संग्रहपाल कायस्थों का एक नवीन वर्ग का उदय हुआ, किन्तु उनकी अलग जाति नही बनी थी | इसके अलावा याज्ञवल्क्य ने मूर्धाभिषिक्त करण, अम्बष्ट, पार्शव, महिष्य तथा उग्र आदि कुछ वर्णकाल में नई-नई संकट जातियों का भी उल्लेख किया है | इस तरह से जातियों का अनवरत विकास होता रहा है |

निष्कर्ष

उपरोक्त वर्णन से यह प्रतीत होता है कि समाज जातिगत रूप से विभाजित था | सभी को अपने कर्तव्य कापालन करना था परन्तु शुद्रो की स्थिति में गिरावट दिखाई पड़ती है और वह अपने अधिकार के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ते है |

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कारुरहं ततो भिषगुप्त प्रक्षिणी नना।
2. नानापियो वसूवधोऽन गा इव तस्थिमेंन्द्रायेन्द्रो परिस्त्रव ऋग्वेद-9, 112
3. पुरुषषुक्त 10. 90. 12
4. ऋग्वेद 1. 113. 16, 8. 35, 16-18, 10, 90, 12
5. शतपथ ब्राम्हण 1. 1. 4. 12
6. शतपथ ब्राम्हण 1, 1, 4. 11
7. शतपथ ब्राम्हण 3. 1. 1. 10, पंचविष ब्राम्हण-6. 11
8. ऐतरेय ब्राम्हण 2. 19
9. कौषीतकी ब्राम्हण 910 1.3.
10. छान्दोग्य उपनिषद-5. 10. 7
11. प्रकाश, डा० ओम प्रकाश, प्रा० भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास
12. प्रकाश, डा० ओम प्रकाश, प्रा० भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास न्यू इन्टरनेशनल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृ० 159
13. श्रीवास्तव, डा० के०सी०, प्राचीन भारत का इतिहास व संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो,2003, पृ० 206, 07
14. दुबे, डा० एच० एन०, भारतीय संस्कृति एवं कला, 1999, पृ०-281
15. मनुस्मृति 1, 88-91
16. महाभारत , वन पर्व , 180, 21-38
17. श्रीमदभगवदगीता , 4-13
18. मनुस्मृति 8, 279-282
19. मनुस्मृति 10, 11-13 , 18-45।